तीन-चार दिन

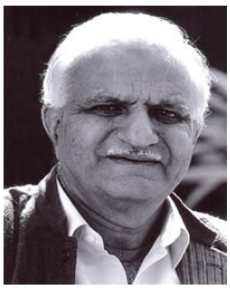

महेंद्र भल्ला

हिन्दी ADDA

तीन-चार दिन

वे दोनों, कालीन पर बैठे थे, मैं सोफे पर। बीच में मेज पर चाय का सामान रखा था। गिरि की पत्नी अरुणा को मैं बार-बार देख रहा था। पहले उसे कभी नहीं देखा था। वह दरअसल बहुत सुंदर थी। किसी काम के लिए वह उठी और अंदर चली गई। मैंने उसके उठने के ढंग और चाल को विस्मय से देखा। 'एक बात बताओ गिरि', मैंने पूछा, 'शादी करनी चाहिए या नहीं? मेरा मतलब है, तुम्हारा तजरुबा क्या है?'

उत्तर की मुझे जरूरत नहीं थी; खास नहीं थी। यों ही हल्की बातों से जी भर गया था।

'तुम्हें किसी दूसरे की राय के बल की जरूरत कब से पड़ने लगी?' गिरि ने कहा। मैं अपनी प्रशंसा पर खुश हुआ मगर छिपे व्यंग्य के संदेह से मरे चेहरे पर खुशी नहीं आई। जो भीतर थी वह भी जाती रही, जब मुझे यह एहसास हुआ कि गिरि ने मेरे भीतर शादी के बारे में अनिश्चय को पकड़ लिया है। गिरि के पास अब भी पुरानी तेज निगाह थी। 'नहीं ऐसी बात नहीं है', मैंने कमजोर आवाज में कहा। उसने मेरी तरफ देखा और चुप रहा।

बरसों पहले जब मैं उसे पहली बार मिला था तो उसके चुप रहने के तरीके से बहुत प्रभावित हुआ था। वह बोलता बहुत कम था, मगर उसके चुप रहने के ढंग से बहुत कुछ पता चल जाता था। छह फुट के थोड़ा ऊपर कद, जिसमे हम उसे गिरीश की बजाय गिरि कहते थे।

'मुझे छोड़ो, तुम अपनी बताओ।' मैंने फिर पूछा।

वह कुछ देर सोचता रहा मानो इस रोज-मर्रा की बात पर ध्यान देना उसे याद न रहा हो। फिर कहा 'ठीक है यार, ठीक है। काफी अच्छी है।'

मुझे लगा, वह कुछ और भी कहना चाहता था मगर चुप रहा।

'सिग्रेट है?' एकाएक उसने पूछा। थोड़ा चौंक कर मैंने उसे सिग्रेट दी।

'तुम अभी तक यही पीते हो?'

'हाँ।'

हम दोनों चुप हो गए।

अरुणा आई तो मैंने महसूस किया, कमरे में पैनापन आ गया है। मेरी अपनी दिक्कत यह है कि जहाँ जाता हूँ, वहीं से उठने को जी करता है। मन रमने न रमने की बात नहीं, बस हमेशा लगता है सग जाना हुआ है, सब ऐसे ही होता है, होगा भी। सिर्फ औरतों में दिलचस्पी बची रह गई है। आम, स्वाभाविक दिलचस्पी नहीं, एक खास। उनसे घुलने-मिलने में, खास कर जब उनके पति ईर्ष्यालु हों, एक तिक्त सुख मिलता है, हालाँकि यह भी ऊपरी होता है। भीतर यही रहता है कि कोई फर्क नहीं पड़ता।

अरुणा के आने से यह एहसास कुछ कम हो गया। उसकी तीखी, थोड़ी छोटी आँखें (काश, वे बड़ी होतीं!), सलीके से बँधा उजड्ड शरीर, यह भी नहीं, उसमें कहीं कुछ ऐसा था जो अदम्य था, चेतन था।

मैंने गिरि को देखा। मैंने हमेशा से उसे बहुत पौरुषवान आदमी समझा है। वह है भी, अरुणा भी उसे देख रही थी। मैंने उसकी आँखों में देखकर गिरि को फिर देखा। गिरि के गाल कुछ ढीले थे, बच्चों के-से। उसकी घनी बड़ी मूँछों के पीछे अजब लगते थे; यह मैंने आज ही देखा। मैंने सराहना से अरुणा को देखा मानो उसने किसी गलती को पकड़ने में मेरी सहायता की हो। मुझे लगा वह मुस्कराई। मगर उसके होंठ हल्के भिंचे थे। मेरा उसकी नजरों द्वारा गिरि को देखना उसे अच्छा नहीं लगा, शायद लगा भी हो। उसने सर हिलाया जैसे कह रही हो 'मैं क्या कर सकती हूँ!' वह गिरि को ज्यादा नहीं चाहती, मैंने सोचा।

गिरि सरक कर सोफे के पास आ गया और पीठ टिका कर छत की तरफ देखता धुआँ निकालने लगा।

'सो रहा है क्या?' मैंने अरुणा से पूछा। वह अंदर अपने लड़के बंटी को देखने गई थी।

'हाँ, पता नहीं इतना क्यों रोता है?'

'बाप पर गया है', मैंने मजाक किया। हम तीनों हँस पड़े।

अरुणा ने तीखेपन से मुझे देखा और कहा, 'आप इनके बारे में बहुत जानते हैं।'

'पुराना दोस्त हूँ', हँसते-हँसते मैंने कहा।

'हाँ', अरुणा ने कुछ देर बाद कहा, 'आपकी बात बहुत करते हैं। लगता है, आपके साथ दिल्ली और इनके अतीत में कोई फर्क नहीं।'

'मैं श्रेय को कुबूल करता हूँ', मैंने नाटकीय ढंग से कहा।

'अब आखिर आपको देखा', - वह कहने लगी।

'तो पाया, किस गधे के लिए इतनी जबान जाया की गई', मैंने जोड़ा। वह हँसी। हम दोनों भी।

'आप बहुत चालाक हैं', उसने कहा।

'आप पहली औरत हैं जिसने मेरे बारे में सच बोला है।'

हम फिर हँस पड़े।

गिरि की सिग्रेट खतम हो गई तो उसने बिना बुझाए उसे दरवाजे के पास नंगे फर्श पर फेंक दिया। अरुणा और मैंने देखा और चुप रहे। फिर अरुणा ने अजीब आँखों से गिरि को देखा मानो रूठे बच्चे की, ध्यान न देते हुए भी, हर हरकत पर गौर कर रही हो।

गिरि से कुछ छिपना असंभव-सा था। बल्कि उसके मौन के सामने मुझमें अस्फुट झेंप रहती थी। बातों के पीछे हर तह की, खुद बातों की हर सलवट और अदृश्य गड़हों को वह अच्छी तरह जान लेता था। मुझे उससे ईर्ष्या इसी बात से थी कि सब समझ कर, जहाँ मैं अक्सर विमुख, उदासीन हो जाता था, वह तड़प उठता था। आज तक उसने किसी चीज को अपनाया नहीं था, एक तरह से रहना नहीं सीखा था, लेकिन रहता था। जीना, जिस तरह से वह चाहता है, न हुआ तो क्या हुआ। मुझे अपनी गिरावट पर क्षोभ हुआ।

अब भी, मुझे लगा, मेरे और अरुणा के बीच बनते रिश्ते की गति को वह जानता है। इसलिए मुझे अरुणा में दिलचस्पी लेना या न लेना फिजूल लगा।

'अब तो तुम लोग भोपाली हो गए हो', मैंने तनाव को दूर करने के लिए पूछा।

'हाँ - लेकिन अंततः दिल्ली या भोपाल में रहने का कोई फर्क नहीं है', गिरि ने कहा।

'दिल्ली जाने से तो अब सर दुखने लगता है', अरुणा ने कहा।

'क्यों नहीं दुखेगा। वहाँ हजारों में एक और यहाँ सिर्फ एक ही। तुम जानते हो रमेश, यहाँ अरुणा बाहर से आके बसे लोगों में सर्वश्रेष्ठ सुंदरी मानी गई है', गिरि ने मुस्कराते हुए कहा।

'इसमें क्या शक हो सकता है', मैंने अरुणा के लजाते चेहरे को देख कर कहा। शर्म उसके चेहरे पर पराई-सी लगती थी।

'अब आप भी लगे बनाने!' उसने खुश हो कर कहा।

'लेकिन आप तो दिल्ली में मानी हुई, मेरा मतलब है अपनी खूबसूरती के लिए बहुत प्रसिद्ध थीं। आप ही के पास भीमसेन कपूर ने अपने खून से लिख कर शादी का प्रस्ताव भेजा था।'

'हाँ हाँ, ये वही हैं', गिरि ने मजा लेते हुए कहा।

'ओह, वह बेहूदा भीम!'

'लाल स्याही तो नहीं थी', मैंने कहा।

'नहीं तो', अरुणा ने झट कहा। फिर थोड़ा सँभल कर बोली, 'मेरे खयाल में तो नहीं थी। वह बहुत बेवकूफ था।'

'आजकल तो वह मोटर के पुर्जों की दुकान कर रहा है। उसने शादी भी कर ली है। उसकी पत्नी बहुत सुंदर है', मैंने कहा।

'हूँ!' अरुणा ने छद्म विस्मय से कहा और हम तीनों खिलखिला कर हँस पड़े।

थोड़ी देर तक पुराने दिनों की बातें होती रहीं। फिर दोनों तैयार हो पार्टी में चले गए जहाँ से उन्हें देर गए रात में लौटना था। पार्टी जरूरी थी और औपचारिक। बहुत सोचने पर भी कोई तरकीब नहीं सूझी जिससे मैं उनके साथ जा सकता।

मैंने ह्विस्की निकाली और चुपचाप पीने लगा। एक कोने में गिरि की पुरानी किताबों की अलमारी थी। मेरी नजर 'एना केरेनिना' पर गई, जिससे हम दोनों चमत्कृत हुए थे। पास ही 'केपिटल' पड़ी थी जो हम दोनों को 'बोर' लगी थी। उन किताबों के साथ हमारी दोस्ती का लंबा अरसा जुड़ा था। लगता था अलमारी मुद्दत से नहीं खुली है। अंदर किताबें ठंडी, बर्फ-सी बेजान लगती थीं। किताबें कभी सजावट के लिए नहीं होतीं, मैंने सोचा। अकेले में ज्यादा पीने की इच्दा नहीं हुई। मैंने जल्दी ही खाना खाया और सो गया।

गहरी रात में नींद खुली। मुझे लगा मुझ पर कोई भार-सा है। मेहमानों वाले कमरे के साथ ही गिरि का सोने का कमरा था। मुझे एहसास हुआ वह भरा है, अजीब तरह से भारी-सा है। कोई आवाज नहीं आ रही थी, दीवार की तरह मौन खड़ा था। मुझे हल्की बेचैनी होने लगी। मैंने सिगरेट सुलगाई और कंबल ओढ़ कर बरामदे में आ गया। आँगन में चाँदनी चादर-सी पड़ी थी। एक कोने में दो मटके थे जिनकी छाया भी मुझे साफ नजर आई। तार पर जुराबों का जोड़ा और बंटी के फ्राक लटक रहे थे। गिरि को सफाई की पुरानी आदत है, लेकिन उसकी सफाई में कोरापन नहीं होता, बल्कि उसे देख तृप्ति-सी होती है। गिरि से अभी तक खुल के बात नहीं हुई। परसों मैं चला जाऊँगा।

पास से एक बिल्ली निकली और आँगन को एक से दूसरे सिरे तक आराम से पार कर कूद कर दीवार पर चढ़ गई, थोड़ी देर वहाँ रुकी, फिर गुम हो गई। मटकों की छाया एक दूसरे से अलग थी और उनके खुले काले मुँह खामोशी से भरे लगते थे। यह भी लगता था कि मटके खाली हैं। इनका क्या मतलब है? और उस बिलली का? जो अभी-अभी गई है, और इस आँगन का?

मैं हँसा सवाल पर, दूसरे, जवाब न दे पाने पर। मेरी हँसी चाँदनी पर दबे पाँव सरक कर बिल्ली की तरह कहीं गायब हो गई।

गिरि के सोने के कमरे की बत्ती जली और दरवाजा खोल अरुणा बंटी को लिए बाहर आ कर पेशाब कराने लगी। मैं कुछ देर उन्हें देखता रहा - वे भी बिल्ली, मटकों और आँगन का हिस्सा लगे।

फिर मैंने कहा, 'गृहस्थी काफी मुश्किल होती है।' सन्नाटा इतना था कि मुझे अपनी आवाज भयावह लगी!

'कौन?' अरुणा के कंठ से चीख-सी निकली - 'अरे आप-आपने तो मुझे डरा ही दिया। आप यहाँ क्या कर रहे हैं?'

'तारे गिन रहा हूँ।' मैंने न जाने क्यों, थोड़ी झुँझलाहट को दूर करने के लिए कहा।

'कितने गिने?'

'अभी तो...'

अरुणा बंटी को कंधे पर लिए मेरे पास आ गई। मेरे पास आने के लिए वह चाँदनी में से गुजरी। मुझे लगा, रात अकेले, निर्मल ताल में मछली चमक उठी हो। मैं थोड़ा सिहरा।

'ठंड लग जाएगी, सो जाइए।' अरुणा ने कहा।

वह मेरे बहुत पास आ गया थी। मुझे कल की बात याद हो आई जब कार की अगली सीट पर हम तीनों बैठे भोपाल के बाहर निकल गए थे। अरुणा ने आग्रह किया था, मैं कोई गाना सुनाऊँ। मेरे मना करने पर भी मुझे एक-दो अधूरे गाने सुनाने पड़े थे। 'आपकी आवाज बहुत अच्छी है' अरुणा ने कहा था और मुझे छूती उसकी देह गरम हो उठी थी। वह मेरी तरफ नहीं देख रही थी। गिरि चुपचाप गाड़ी चला रहा था।

मैंने अरुणा को देखा और उसके कंधे पर सोए बंटी को प्यार करने के लिए हाथ बढ़ाया। वह झटके से पीछे हट गई और 'इसे ठंड लग जाएगी' कह कर अंदर चली गई। वह जानती है, मैंने सोचा, और महसूस भी करती है।

लेकिन मैं थोड़ा खिसिया गया। अंदर शायद गिरि जाग रहा था। मुझे गुस्सा-सा आने लगा।

उसके कारखाने को देख कर मैंने कहा, 'तुम तो छोटे-मोटे पूँजीपति हो गए हो।'

वह सिर्फ हँसा और आई डाक को देखने लगा। चिट्ठियों को उसने बड़े ध्यान से पढ़ा और अपने 'स्टैनो' को बुला कर जवाब लिखा दिए। मैं चुपचाप उसे देख रहा था। वह हर काम इतने मुकम्मिल तरीके से करता था कि कोई गुंजाइश नहीं रहती थी - कहीं यही एहसास बचा रहता था कि इतनी बारीकी की भी क्या जरूरत है।

थोड़ी देर बाद हम कारखाने में काम देखते पिछले दरवाजे से बाहर आ गए। वहाँ भोपाल का मीलों तक धीरे-धीरे उतरता छोटी-छोटी हरी झाड़ियों और घास से ढँका समस्थल दिखाई देता था। जाड़ों की धूप दूर तक अबाध फैली थी, जिंदगी की तरह बहुत ज्यादा, समस्थल के रोम-रोम में रची हुई।

गिरि ने एकदम सहज भाव से चपरासी को पुकारा और बीयर मँगाई। हम थोड़ा आगे बढ़ गए और दो पत्थरों पर बैठ गए। गिरि चुप था मगर उसमें एक तब्दीली दिखाई दे रही थी - और यह तब्दीली जैसे कल शाम से शुरू हुई थी जब मैंने उसे शादी के बारे में पूछा था। लेकिन मालूम नहीं।

बीयर आ गई तो हम पीने लगे।

'वही पुरानी, गोल्डन ईगल।'

'तुम जानते हो रमेश, यह पिछले चार सालों में पहला दिन है जब मैं काम के वक्त पी रहा हूँ।'

मैं चुप रहा और बड़ी इज्जत से उसकी गिरावट (जैसा कि मैंने मन में समझा) देखने लगा। मुझे किसी भी उसूल से चिढ़ थी।

'चार सालों के बाद कारखाना अब ढंग से चल रहा है, और घर भी। लेकिन मुझे लगता है दोनों मुझे पूरी तरह से खपा नहीं पाते। मैं बाहर बेकार हूँ, कम-अज-कम मेरा काफी बड़ा हिस्सा बेकार है, हमेशा रहा है। मैंने अब जाना है।'

उसकी पीठ समस्थल की तरफ थी। मैंने उसके तने चेहरे को देखा, उसके बड़े हाथ में कसे बीयर के गिलास को देखा। मुझे लगा, वह मेहनत से चढ़ के आया है। अब उसे मालूम नहीं, क्या करे।

'कल मुझे अचानक लगा मेरी जिंदगी पशुओं-सी है। मैं भी हजारो-लाखों दूसरे आदमियों की तरह वक्त काट रहा हूँ।' गिरि ने कहा। न जाने क्यों मुझे वे दिन याद आ गए जब हम यूनीवर्सिटी की सड़कों पर चलते हर आदमी का, हर उसूल का, हर वाद का मजाक उड़ाया करते थे।

गिरि उत्तेजित था। उससे और कुछ कहा नहीं गया। उसके बीयर से नम, धूप में चमकते होंठ बोलते-बोलते अजीब तरह से रुक गए। उसने गिलास में बची बीयर को खतम करके सिगरेट लगाई, फिर फेंक दी।

मैं कई बार हैरानी से सोचता हूँ तुमने वास्तुकला क्यों छोड़ दी। मेरे अंदर अंदर आग की तरह यह बात बार-बार उठती है कि कुछ ऐसा करूँ जो सिर्फ मात्र रहने से अलग हो। लेकिन मेरे पास, मेरे पास गुण नहीं है...।'

मैंने बीयर उसके गिलास में डाली, अपने में भी और कहा, 'ऐसी क्या बात है। तुम कुछ भी कर सकते हो।'

'नहीं', उसने मजबूती से कहा और बीयर पीने लगा।

हम कुछ देर चुप बैठे रहे। उसने 'नहीं' इस ढंग से कहा था कि मैं भी निराश-सा हो गया। मुझे लगा हम दोनों कुछ सुलझाने के लिए यहाँ बैठे हैं जिसके बारे में गिरि ने अभी-अभी नहीं कहा है।

मौन काफी देर रहा। एक भारीपन हम दोनों पर छा गया तो मैंने पूछा, 'एक बात बताओ गिरि, अरुणा के साथ, मेरा मतलब है, तुम अरुणा के साथ क्या... ठीक हो?'

उसने मेरी तरफ कठोरता से देखा, फिर पैरों के पास पड़े ठीकरों पर बीयर का गिलास हल्के-हल्के मारता हुआ कहने लगा, 'ठीक या गलत कहना अजीब और सस्ता लगता है। मैं उसे बहुत चाहता हूँ। मगर नहीं जानता, उसके सामने अपने को असहाय-सा पाता हूँ। शायद वह मुझसे बेहतर है। वह बहुत तेज है। एक तरह से वह भी मुझे प्यार करती है - मगर शायद वह किसी दूसरे, परिपक्व, किसी हद तक तुम्हारे जैसे आदमी के साथ ज्यादा सुखी रहती। एक ऐसा आदमी जिसके सामने वह, उसी के शब्दों में हीन महसूस करती - गलत या सही, वह यही सोचती है।' मैं चौंका।

'लेकिन मैं गिरि...।'

उसने मेरी तरफ चहकती आँखों से देखा और चुप रहा।

दोपहर में हम खाना खाने गए तो अरुणा घर में नहीं थी। वह पैलेस में अपनी सहेली से मिलने गई थी। उसने कहलवा भेजा था कि अगर उसे देर हो जाए तो हम खा लें। हम खा चुके तो गिरि ने कहा, 'आओ एक घंटा सो लें - इधर ही आ जाओ।'

मैं भी उसके सोने के कमरे में चला गया। पहला बिस्तर अरुणा का था। दूधिया पलंगपोश के किनारों पर काले डोरों की दो लकीरें थीं। मैंने अरुणा के बिस्तर पर बैठ कर जूते उतारे, नैकटाई को ढीला किया और वहीं लेट गया। बिस्तर बहुत नर्म और गुदगुदा था। लेटते ही मैंने महसूस किया, मैं अरुणा के संपर्क में हूँ, मानो उसी पर लेटा हूँ - मुझे अजीब मजा आ रहा था। 'मजा' मैंने शब्द को पकड़ा। और मेरी आँखों के सामने कल रात में देखी अरुणा की बिखरी, आकर्षक देह आ गई। मुझे यह जान कर हैरानी हुई कि बिना झिझक या जुर्म महसूस किए, मैं अरुणा के बारे में सोचता हूँ। क्या गहरी उदासीनता के कारण संस्कारों से छुट्टी पा गया हूँ या यही स्वाभाविक होता है?

गिरि ने मेरी आँखों में जरा ध्यान से देखा और अपने बिस्तर पर जा लेटा। उसे मेरा अरुणा के बिस्तर पर आ लेटना अच्छा नहीं लगा - लेकिन उसकी आँखों में व्यंग्य भी था।

थोड़ी ही देर में हम सो गए। या, मेरा खयाल है, मैं सो गया। मगर कच्ची नींद में लगा, पास का बिस्तर खाली है। मैंने आँखें खोली तो गिरि को चिठ्टी पढ़ते हुए अंदर आते देखा। 'उठो रमेश - चलें।' उसने चिठ्टी से आँखें हटा मुझे, फिर बिस्तर को देखा। उसकी आँखों में ढीली दयनीयता-सी थी और उसके गाल थोड़ा लटक आए थे। इस वक्त वह गिरि नहीं लगा, सिर्फ एक आदमी लगा जिसे अरुणा प्यार नहीं करती थी। अरुणा! अरुणा! लेकिन गिरि के देखते अरुणा के बारे में सोचना मुझे चर्च में गाली देने के समान लगा। तो भी मैंने पीठ से बिस्तर को थोड़ा दबाया और उठ कर जूते पहनने लगा।

मेरे उठते ही गिरि ने बिस्तर में मेरे लेटने से पड़ी सलवटों को बड़ी सावधानी से ठीक किया और बिना मेरी तरफ देखे बाहर चला गया।

आज गिरि ने अपने घर पार्टी का इंतजाम किया था। उसने मुझे कहा, 'तुम न जाने फिर कब आओ। जिन लोगों के बीच मैं रहता हूँ, उन्हें तो देखते जाओ। मेरी ब्रांड का शायद ही कोई हो।'

'सब ऐसे ही हैं। चलता है', मैंने कहा।

गिरि ने एकाएक रुक कर बड़ी सूक्ष्मता से मुझे देखा, मेरी पलकें उसकी नजरों के सामने न जाने क्यों फड़क-सी उठीं।

'सुनो रमेश। तुम बहुत बदल गए हो। तुम्हें देख घर की उस दीवार की याद आती है जो मेंह-धूप में बेरंगी और उजाड़-सी लगती है। क्या, तुम भी - ' वह चुप रहा।

बात मुझे चुभ गई। मैंने कहा, 'शायद।' अचानक ही मैं दिलचस्पी खो बैठा - 'खैर, हटाओ। क्या फर्क पड़ता है।'

'फर्क हमेशा पड़ता है', उसने कहा।

शायद। मुझे आशा अब भी थी। सिर्फ आशा ही थी। मैं उन आदमियों में से हूँ, मैंने सोचा, जो अमूर्त आशा के सहारे बाकी सब चीजों से लगाव खो बैठते हैं।

गिरि चला गया तो मैं खिड़की में खड़ा हो बाहर खाली सड़क को देखने लगा। सामने घर का दरवाजा खुला। दो बच्चियाँ निकलीं और 'पोर्च' में खेलने लगीं। गेंदों की मानिंद उनके सर ऊपर-नीचे नाच रहे थे। 'पोर्च' में खेलती हैं, मर जाएँगी एक दिन!

उन्हें देख मुझे न जाने कैसे अरुणा का खयाल आ गया। अरुणा इतनी सुंदर है, इतनी बढ़िया, इतनी... औरत कि शायद मैं - क्या?

मैंने सोचना बीच में ही छोड़ दिया और अंदर जा कर अरुणा और गिरि के साथ पार्टी के इंतजाम में मदद करने लगा।

पार्टी में अधिकांश 'रोज-मर्रा' वाले लोग थे, गैरदिलचस्प। तीन औरतें थीं जो कम-अज-कम तीन-तीन चार-चार बच्चों को जनम दे चुकी थीं। बेकार थीं। तीनों बस, अरुणा की तरफ देख रही थीं। एक गुजराती महिला थी, चालीस के करीब। वह हमारे साथ बराबर व्हिस्की पी रही थी। उसमें इतना खुलापन था कि बार-बार सराहने को मन होता था। बहुत समझदार थी और बात करने से पता चला बहुत पढ़ी-लिखी है जो मेरे लिए भी काफी नई बात थी। उसके साथ उसकी दो जवान लड़कियाँ थीं, उनकी आँखें बड़ी काली और एक सी थीं। वे बार-बार हमारी बातों पर हँस पड़ती थीं।

'तुम्हारे लोगों में दो बछड़ियाँ जरूर बढ़िया हैं। उनकी माँ भी -' गिरि से मैंने कहा।

'चुप बे चुप। - अभी अरुणा को जलाऊँगा।'

'अच्छा!'

जो पी रहे थे, अब तक उन्हें नशा आने लगा था। दोनों लड़कियाँ न पीने पर भी नशे में लगती थीं। तीनों औरतें हाथों में रस के गिलास लिए साथ-साथ बैठी थीं। जिंदगी की ऊब की तरह जो इंतजार करते हैं कि कब यह पागल खेल खतम हो और उन्हें अपने-अपने घर ले जाएँ।

'मिस्टर गिरीश!' एक साहब ने गिरि को पकड़ कर कहा, 'तुम्हारी पार्टियाँ मैं हमेशा सबसे ज्यादा पसंद करता हूँ।' उसके पास ही दो आदमी बैठे थे जो आपस में किसी बेपार-धंधे की बात कर रहे थे। यह सुन उन्होंने गिरि की तरफ देख कर सिर हिलाया और मुस्कराए। एक-दो और लोग भी गिरि की पार्टियों की तारीफ करने लगे। गिरि पेशेवर मेहमान-नवाज की तरह मुस्करा दिया।

छोटे-छोटे गोल बन चुके थे, जैसा कि थोड़ी बड़ी पार्टियों में अक्सर होता है। मैं गुजराती महिला के पास बैठा बातें कर रहा था और उसकी लड़कियों को देख रहा था। जैसे एक पुराना पेड़ दो नए उगते पौधों को देखता है। एकाएक गुजराती महिला ने बातें करना बंद कर दिया और गिरि और अरुणा को देखने लगी। वे दोनों अकस्मात ही दरवाजे के पास एक साथ खड़े हो गए थे। दोनों वहाँ साथ-साथ खड़े बहुत ही खूबसूरत और यौवन से भरपूर लग रहे थे। गुजराती महिला ने इशारे से उन्हें बुलाया और गिरि को पास झुका कर कहा, 'आपकी जोड़ी अद्‌भुत है।'

'फूह।' गिरि ने किया।

'लेट अस डान्स।' किसी ने कहा।

'लेट अस डान्स। लेट अस डान्स।'

सिवाय उन तीन औरतों के, सब खड़े हो गए। बैठक के एक कोने से फटाफट कालीन हट गई, पाउडर छिड़क दिया गया। गिरि ने 'रिकार्ड चेंजर' में रिकार्ड भर दिए।

लोग नाचने लगे, हँसने लगे। तेजी से पीने लगे। शुरू हो रहा है, मैंने सोचा।

अच्छा नाचने वाला कोई नहीं था सिवाय गिरि के। लोग गलतियाँ कर रहे थे, मगर हर साफ बड़ी गलती पर जोर से हँस पड़ते पर नाचते जाते।

गिरि गुजराती महिला के संग नाच रहा था। वह गिरि की ओर अपलक देख रही थी और उसकी लड़कियाँ उन दोनों की ओर।

अरुणा! मगर अरुणा कहाँ है? मैं उसकी तरफ नहीं देख रहा था। अभी-अभी वह मेरे पास आई थी। सैंट की लपट व्हिस्की की गंध को चीरती हुई मेरे नथनों को हरा कर गई। 'देखिए। आप ज्यादा मत पीजिए। इन्हें तो जल्दी चढ़ जाती है', और वह ध्यान से गिरि को देखने लगी।

'अच्छा! अच्छा, जैसा आप चाहें।' मैंने हँसते-हँसते कहा। वह भी हँसी।

गिरि और गुजराती महिला नाचते-नाचते हमारे पास आए तो गुजराती महिला ने कहा, 'अरुणा, मैं तुम्हारे पति के साथ 'फ्लर्ट' कर रही हूँ।'

अरुणा हँसी। फिर बोली, 'आप जो मर्जी कीजिए। मैं सुरक्षित हूँ।' यह कह कर उसने मेरी तरफ देखा। मैं मुस्करा दिया। वह गिरि को कितना जानती है, मैंने सोचा।

अरुणा ने लाल साड़ी पहनी थी। लाल रंग मुझे बुरा लगता था। मगर उस वक्त अरुणा लाल रेशमी साड़ी में आग की लपट लग रही थी, चमकती, दीप्तमान। मैंने इतनी सुंदर स्त्री शायद ही देखी हो - मैं नशे में नहीं था। दूसरी चीजों की तरह व्हिस्की भी मुझ पर बहुत कम असर करती थी।

मुझे डर था। मैं उसके संग नहीं नाच रहा था। शायद कुछ कर बैठूँ! भीतर इच्छा भी थी कि कुछ कर डालूँ या कि कुछ हो जाए, मुझसे कुछ हो जाए। मगर कुछ करूँगा नहीं, कुछ होगा नहीं यह भी जानता था।

इसी बीच मैंने देखा गिरि गुजराती महिला की बड़ी लड़की के संग रॉक-एन-रोल कर रहा है। बाकी नाचने वालों ने नाचना बंद कर दिया और सब चुप हो उन्हें देखने लगे। गिरि की लंबी टाँगें फौलाद की स्प्रिंगों की तरह खुलती बंद हो रही थीं। उसकी पीठ चीते की पीठ की तरह शानदार थी। नाचते वक्त वह तनती और उसके कोट के बीच में उसके पुट्ठों की गति दिखाई दे जाती।

हम सब साँस रोके उन्हें नाचते देखते रहे। जब रिकार्ड खत्म हुआ तो बहुत देर तक तालियाँ बजती रहीं जिनके बीच गुजराती महिला की लड़की हाँफती अपनी माँ के पास आई और धीरे से बोली 'ओ! ही इज टेरेफिक।'

नाच फिर शुरू हुआ। अरुणा ने मेरी तरफ देखा और कहा, 'आप डान्स नहीं करेंगे क्या?'

'आप खाली ही कहाँ होती हैं? मैं तो इसीलिए भोपाल आया हूँ।'

वह हँसी। 'आप बहुत चालाक हैं।'

हम नाचने लगे। अरुणा का नर्म छोटा हाथ मेरे बाएँ हाथ में खुश-क़िस्मती-सा चमक रहा था। वहाँ से उतरती उसकी नंगी बाँह को मैंने देखा। फिर आँखों में, तरल, चमकती आँखों में। दाईं बाँह उसकी सुडौल, जीवंत कमर में थी। एक क्षण के लिए मैं अपने पर वश खो बैठा। मैंने आँखें मूँद लीं।

'क्या बात है। बहुत पी ली है क्या?'

'नहीं। नहीं।' हम चुपचाप नाचने लगे।

'आप इतनी खूबसूरत लग रही हैं कि मुझ सनकी को भी विश्वास नहीं होता।'

वह खुशमिजाजी से इतना अच्छा हँसी कि मुझे थोड़ी हैरानी हुई। मगर वह एकाएक चुप हो गई और गिरि को देखने लगी।

थोड़ी देर तक कड़ी नजरों से देखती रही, फिर चेहरे पर नरमी आ गई।

रिकार्ड बज चुका तो अरुणा एक ओर खड़ी हो गिरि को कठोरता से देखने लगी। मैंने गौर किया, इसमें ईर्ष्या नहीं थीं, सिर्फ कठोरता, एक ऐसी कठोरता जो ज्यादा संयत शक्तिशाली व्यक्ति में कमजोर व्यक्ति की मूर्खता पर होती है जब वह उसके प्रति उदासीन होना नहीं चाहता।

गिरि ने मुड़ कर अरुणा की तरफ देखा और चुपके से, मुझे लगा, दुबक कर बाहर चला गया। यह सब एक क्षण में हो गया। अगला रिकार्ड बजने लगा। हम फिर नाचने लगे।

उसके बाद मुझे यही याद है कि हमने खूब शोर किया। बरामदे में रखे मेज के गिर्द खाना खाया।

मेहमानों को विदा कर हम तीनों सोने चले गए। जूठी प्लेटों से भरा मेज चाँदनी में अजीब तरह से खड़ा रहा। सोते वक्त आँखों के आगे वही आता रहा।

सुबह मुझे गिरि ने उठाया। उसके हाथ में चाय का प्याला था। 'उठ बे, दस बज गए।'

मैं उठा और चुपचाप चाय पीने लगा।

'रात को काफी अच्छा रहा।'

'हाँ।'

गिरि सामने कुर्सी पर बैठ गया। उसने मेज से सिगरेट उठाई और सुलगा के पीने लगा। वह कुछ कहना चाहता था। वह उन आदमियों में से था जो चेहरे पर सब कुछ दिखा देते हैं।

'वे दो लड़कियाँ कौन थीं?' मैंने अरुणा के खयाल को हटाने के लिए पूछा।

'रात को बताया तो था। उसकी माँ गुजराती है, बाप पंजाबी। वह जो बड़ी काली बो लगाए था।'

'हाँ! हाँ! मैं चुप हो गया।

'सुनो रमेश, तुम्हें याद होगा कल मैंने 'टेरीलीनवूल' का सूट पहना था।'

'सूट! - हाँ, मगर क्यों?'

'वैसे ही। - क्या वह बहुत बारीक था। मेरा मतलब है क्या वह बहुत पतला था।'

'बारीक? पतला?'

'बता न साले', उसने झेंप को मिटाने के लिए असफलता से लहजा बदला।

'पतला तो होता ही है', मैं उसे देख गंभीर हो गया।

'मेरा मतलब है', इसके बाद उसने आँखें झुका कर कहा, 'क्या उसमें से मेरा 'अंडर-वेयर' दिखाई दे रहा था?'

'अंडर-वेयर**?**' मैंने ताज्जुब से पूछा।

'हाँ! हाँ 'अंडर-वेयर'।' उसने थोड़ा खीज कर कहा। फिर स्वर को धीमा करके कहने लगा, 'अरुणा कहती है मेरा 'अंडर-वेयर' दिखाई दे रहा है - 'डिस्ग्रेस' ...उसने वाक्य पूरा नहीं किया। मैंने उसके मुँह की तरफ देखा। लगा, वह रात को रोया है।

'नहीं तो, मैंने, असल में, गौर नहीं किया -'

वह अचानक ही उठा और बाहर चला गया। फिर एकदम ही लौट आया।

'सुनो, तुम सीट बुक कराने जाओगे तो एक और करा लेना। अरुणा भी तुम्हारे साथ जाएगी। अरसे से दिल्ली जाने के लिए कह रही थी। अब सोचा, तुम्हारा साथ अच्छा है, भेज दूँ।' वह फौरन ही चला गया।

सीट बुक कराने तो मुझे उसी के साथ उसी की गाड़ी में जाना था।

गाड़ी के चलते ही गिरि लौट पड़ा। मैं उसके असाधारण शरीर को पुल की तरह बढ़ते देखता रहा। अरुणा खिड़की में मौन बैठी थी।

'आपको उसे अकेला नहीं छोड़ना चाहिए था', मैंने कहा।

'ओह! उन्हें अकेले भी रहना चाहिए।' उसने करीब-करीब क्रूरता से कहा। मैं चुप हो गया।

काफी देर तक हमारे ऊपर भोपाल का असर रहा - जैसा अक्सर शहर को छोड़ते वक्त होता है। फिर सफर अपने खास असर को लेकर डिब्बे और हमारे भीतर भरने लगा मटियाला, रेतीला, उदास।

बहुत देर तक हम चुप बैठे रहे। बंटी सो गया था। अरुणा खिड़की के बाहर एकटक देख रही थी। अँधेरा हो गया तो मैंने बिस्तर बिछा दिए। हम फिर चुपचाप बैठ गए। गाड़ी को चलते सुनते रहे।

मैं एक पत्रिका को सामने रखे पढ़ने की कोशिश करने लगा। धीरे-धीरे अरुणा मुझे देखने लगी, खोजती, पैनी नजरों से। मैंने उधर नहीं देखा। थोड़ी हिम्मत करके देखा मानो किसी चीज का सामना कर रहा होऊँ। उसने दृष्टि हटाई नहीं। मैं अचकचाया और आँखें झुका लीं। वह अब भी देख रही थी। मुझे समझ में नहीं आया क्या करूँ। मैं खाली हूँ, कुछ भी नहीं हूँ - यही लगा। मैं दूसरी तरफ देखने लगा। अँधेरे में कभी-कभी कोई खंभा जल्दी से दिखाई देकर ओझल हो जाता।

कुछ देर बाद अरुणा की नजरों का तीखापन जाता रहा। मेरा तनाव कम हुआ। वह सामने नक्शे को देखने लगी। उसको देख कर मेरे मन में कुछ रेंगा। मैंने उसके लिए और उसकी राह से गिरि के लिए गहराई से महसूस किया। अपनी इस लौटी क्षमता पर खुशी हुई।

मैं उठा और उसके पास बैठ गया। वह अब भी सामने नक्शे को देख रही थी। उसमें शहरों के नाम थे और उसको मिलाते गाड़ी के रास्ते।

मैं हलके से झुका और उसके होठों को चूम लिया। वह चुप रही। मैंने उसे दुबारा चुमा। होठों पर पड़ी महीन धूल का स्वाद अजीब लगा।

उसने मेरी तरफ देखा। मेरे हाथ को अपने कंधे से नरमी से हटा दिया, बोली, 'कोई फायदा नहीं।' उसके निरुत्साह को देख मैं निराश हो गया।

'कोई फायदा नहीं', उसने दुहराया

मैंने प्रश्न-सूचक दृष्टि से उसे देखा।

'मैं नहीं कर सकती', उसने कहा।

'मैं समझता था -' मैंने कहने की कोशिश की मगर समझ में नहीं आया कैसे कहूँ।

'आपकी समझ ज्यादा गलत नहीं है', उसने मेरी तरफ साफ देखते हुए कहा, 'मैं आपको पसंद करती हूँ। मैं आपकी समझ से प्रभावित हूँ और आपके अपने-आपको पेश करने के तरीके से भी। मगर आप में वह नहीं है जो गिरि में है। उसमें जान है। जो आज तक खड़ी है। काश, जो आपमें है उसमें होता...'

वह एकाएक फूट कर रोने लगी। बहुत देर तक रोती रही। मैं कुछ कर सकने में असमर्थ बैठा रहा। कोई क्या कर सकता है?

'मगर अरुणा...!' मैं कहने जा रहा था कि अरुणा मैं तुम्हें प्यार करता हूँ मगर यह बात तो इतनी साफ थी। मैं उसे और गिरि को बहुत प्यार करता था। मगर मुझे यह कहना बहुत हल्का लगा - अरुणा जो महसूस कर रही थी उसके सामने और जो गिरि ने समस्थल पर महसूस किया था उसके सामने।

अरुणा ने लेकिन समझ लिया। उसके होंठ फीकी मुस्कराहट में फैले, फिर बंद हो गए।

मैं उठा और दरवाजा खोल कर खड़ा हो गया। बाहर अंधकार था। अंधकार में पेड़ों के धूमिल आकार भागते, गोल होते दिखाई दे रहे थे। ठंडी हवा सारी देह को कँपा रही थी।

अगर मैं आत्महत्या कर लूँ तो भी क्या फायदा होगा। अरुणा और गिरि ने शायद कभी आत्महत्या की बात नहीं सोची होगी। बात मुझे बेहद सही लगी। मैंने अरुणा की तरफ देखा फिर हैरानी से रेल की पटरियों पर पड़ती डिब्बों की रोशनी को देखने लगा।